[२०] श्री कल्पवतंसिका (उपांग)सूत्रम्

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

“कल्पवतंसिका” मूलं एवं वृत्ति:

[मूलं एवं चन्द्रसूरि-विरचिता वृत्ति:]

[आद्य संपादक: - पूज्य अनुयोगाचार्य श्री दानविजयजी गणि म॰ सा॰]

(किञ्चित् वैशिष्ट्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर **(M.Com., M.Ed., Ph.D.)**

15/01/2015, गुरुवार, २०७१ पौष कृष्ण १०

jain_e_library’s Net Publications

आगम (२०)	“कल्पवतंसिका” - उपांगसूत्र-९ (मूलं+वृत्ति:) अध्ययनं [–] ---------- मूलं [–]
प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र - [२०], उपांग सूत्र - [०९] “कल्पवतंसिका” मूलं एवं चन्द्रसूरि-विरचिता वृत्ति:
	कल्पवतंसिका-उपाङ्गसूत्रस्य मूल “टाइटल पेज”

श्रीचन्द्रसूरिविरचितवृत्तियुतं

श्री कल्पवतंसिकासूत्रम्

न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्दसूरिपुरन्दरशिष्यमहोपाध्यायश्रीमद्वीरविजयशिष्य-
रत्न-अनुयोगाचार्य्यश्रीमद्दानविजयगणिभिः संशोधितम्

रु. ५०१) श्रेष्टि हरखचंद सोमचंद ह. नेमचंदभाइ मु० सुरत एतस्य श्राद्धस्य द्रव्यसाहाय्येन,

प्रकाशयित्री श्रीआगमोदयसमितिः

इदं पुस्तकं अमदावाद(राजनगर)मध्ये शाह वेणीचंद सूरचंद श्री आगमोदय समिति.सेक्रटरी इत्यनेन
युनियनप्रीन्टिंगप्रेसमध्ये टंकशालायां शाह मोहनलालचीमनलालद्वाराप्रकाशितम् ।

वीरसंवत् २४४८, पण्यं रु ०-१२-० प्रतयः ७५० विक्रमसंवत् १९७८. सन १९२२.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूलांक:	अध्ययनं	पृष्ठांक:	मूलांक:	अध्ययनं	पृष्ठांक:	मूलांक:	अध्ययनं	पृष्ठांक:
००१	[१] पद्म	००४	००२/१	[२] महापद्म	००५	००२	[३-१०] भद्र, सुभद्र आदि	००५

['कल्पवतंसिका' - मूलं एवं वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "निरयावलिका" के नामसे सन १९२ २ (विक्रम संवत १९७ ८) में आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद अनुयोगाचार्य श्री दानविजयजी गणि महाराज साहेब | इसमे 'निरयावलिका,कल्पवतंसिका,पुष्पिता,पुष्पचुलिका,वृष्णिदशा' पांच उपांग थे.

इसी प्रत को फिर से दुसरे पूज्यश्रीओने अपने-अपने नामसे भी छपवाई, जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया, मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, अपना एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. जिसमे किसीने पूज्यपाद् सागरानंदसूरिजी के नाम को आगे रखा, और अपनी वफादारी दिखाई, तो किसीने स्वयं को ही इस पुरे कार्य का कर्ता बता दिया और संपादकपूज्यश्री तथा प्रकाशक का नाम ही मिटा दिया |

✣ **हमारा ये प्रयास क्यों?** ✣ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, **४५-आगम सटीक** भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की *[पूर्वाचार्य]* पूज्य श्री के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक **स्पेशियल फोरमेट** बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर **शीर्षस्थानमे** आगम का नाम, फिर अध्ययन और मूलसूत्र के क्रमांक लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा अध्ययन एवं सूत्र चल रहे है उसका सरलता से ज्ञान हो शके, बायीं तरफ **आगम** का **क्रम** और इसी **प्रत** का **सूत्रक्रम** दिया है, उसके साथ वहाँ **'दीप अनुक्रम'** भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रो के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ **कौंस [-]** दिए है और जहां गाथा है वहाँ **||-||** ऐसी **दो लाइन** खींची है या फिर गाथा शब्द लिख दिया है |

हमने एक अनुक्रमणिका भी बनायी है, जिसमे प्रत्येक अध्ययन आदि लिख दिये है और साथमें इस सम्पादन के पृष्ठांक भी दे दिए है, जिससे अभ्यासक व्यक्ति अपने चहिते अध्ययन या विषय तक आसानी से पहुँच शकता है | अनेक पृष्ठ के नीचे **विशिष्ठ फूटनोट** भी लिखी है, जहां उस पृष्ठ पर चल रहे ख़ास विषयवस्तु की, मूल प्रतमें रही हुई कोई-कोई मुद्रण-भूल की या क्रमांकन-भूल सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है |

अभी तो ये jain_e_library.org का 'इंटरनेट पब्लिकेशन' है, क्योंकि विश्वभरमें अनेक लोगो तक पहुँचने का यहीं सरल, सस्ता और आधुनिक रास्ता है, आगे जाकर ईसि को मुद्रण करवाने की हमारी मनीषा है|

.....मुनि दीपरत्नसागर.....

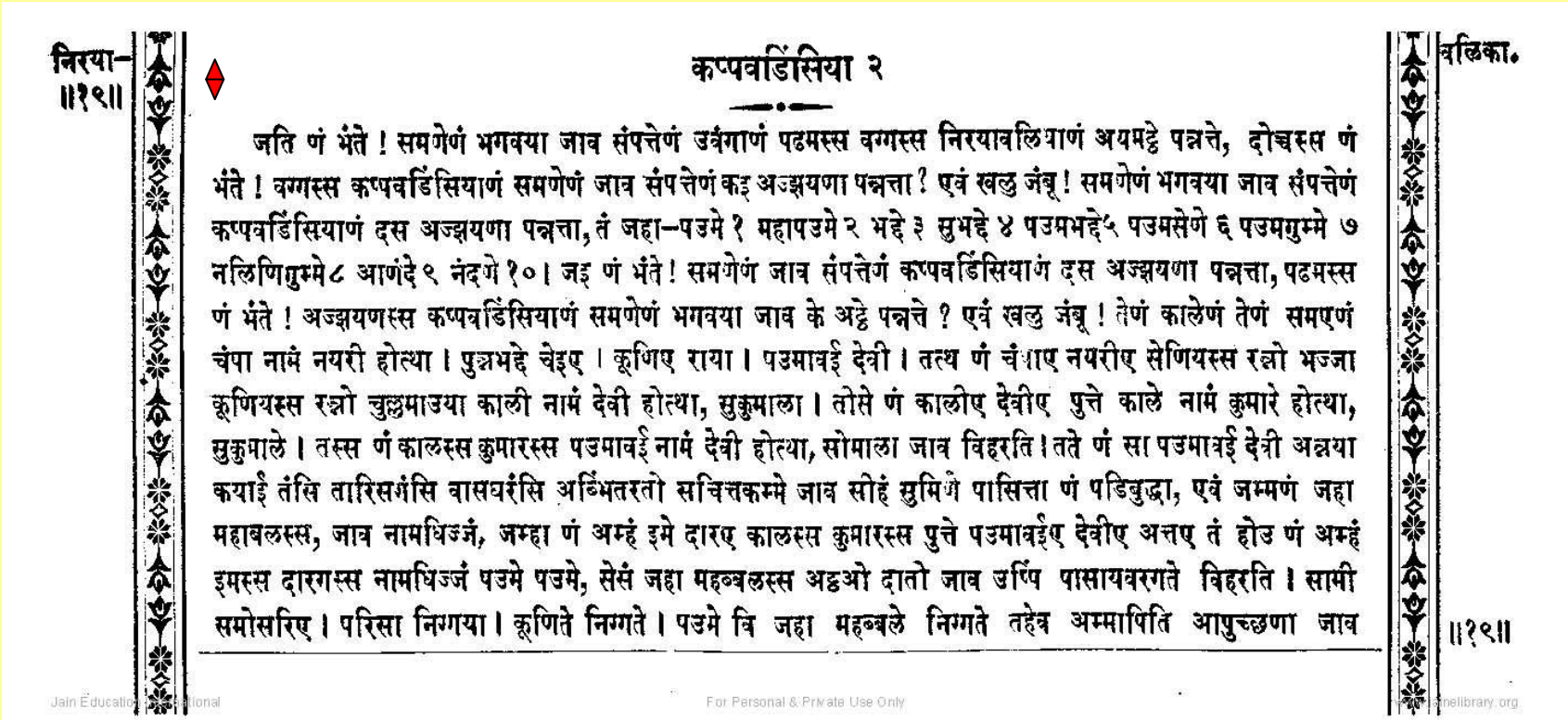

निरया- ॥१९॥

कप्पवडिंसिया २

जति णं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उवंगाणं पढमस्स वग्गस्स निरयावलियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स कप्पवडिंसियाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पन्नत्ता ? एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, तं जहा–पउमे १ महापउमे २ भद्दे ३ सुभद्दे ४ पउमभद्दे ५ पउमसेणे ६ पउमगुम्मे ७ नलिणिगुम्मे ८ आणंदे ९ नंदणे १०। जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स कप्पवडिंसियाणं समणेणं भगवया जाव के अट्ठे पन्नत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। पुन्नभद्दे चेइए। कूणिए राया। पउमावई देवी। तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया काली नामं देवी होत्था, सुकुमाला। तीसे णं कालीए देवीए पुत्ते काले नामं कुमारे होत्था, सुकुमाले। तस्स णं कालस्स कुमारस्स पउमावई नामं देवी होत्था, सोमाला जाव विहरति। तते णं सा पउमावई देवी अन्नया कयाई तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भिंतरतो सचित्तकम्मे जाव सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, एवं जम्मणं जहा महाबलस्स, जाव नामधिज्जं, जम्हा णं अम्हं इमे दारए कालस्स कुमारस्स पुत्ते पउमावईए देवीए अत्तए तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधिज्जं पउमे पउमे, सेसं जहा महब्बलस्स अट्ठओ दातो जाव उप्पिं पासायवरगते विहरति। सामी समोसरिए। परिसा निग्गया। कूणिते निग्गते। पउमे वि जहा महब्बले निग्गते तहेव अम्मापिति आपुच्छणा जाव

वलिका. ॥१९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूलसूत्र-१

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[१]

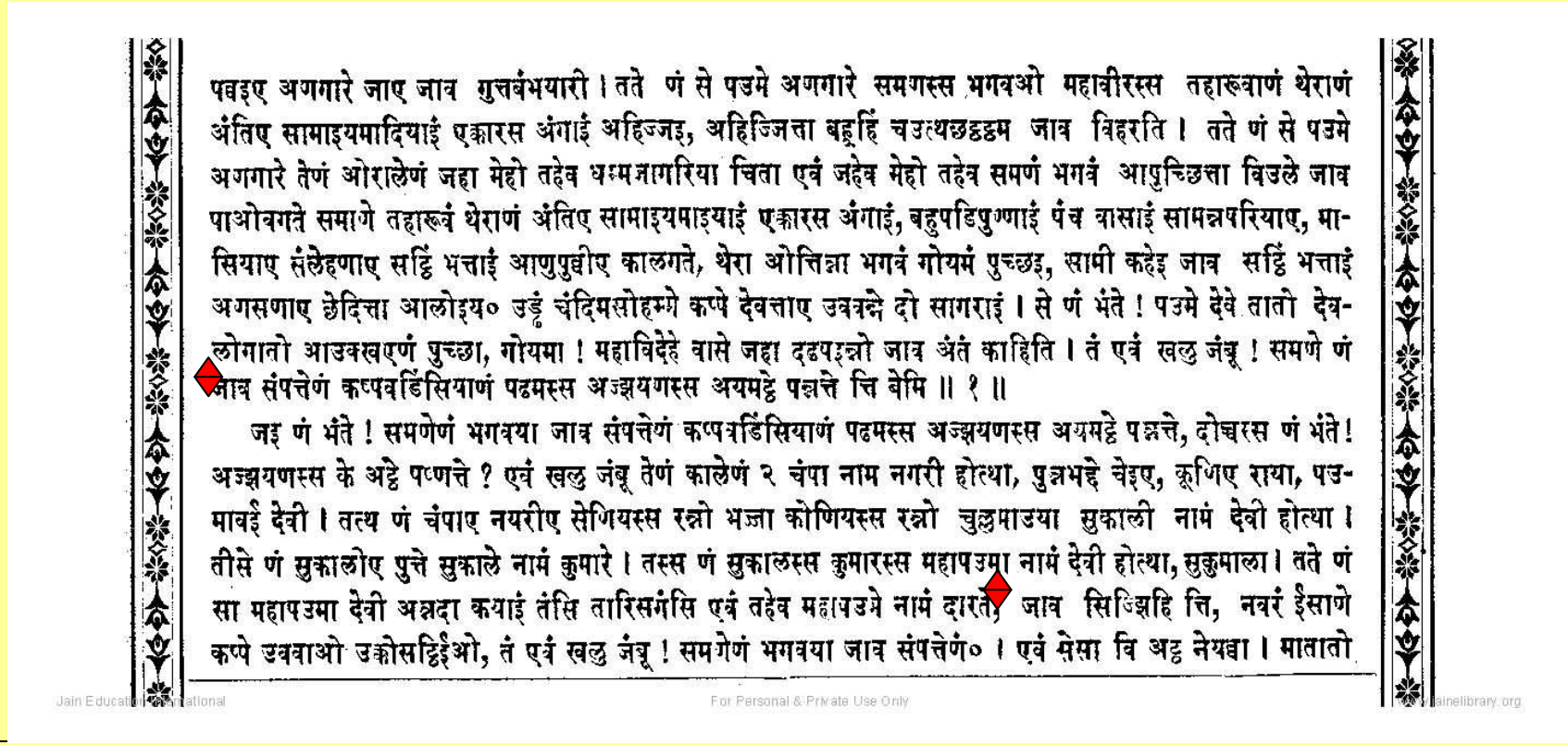

पव्वइए अणगारे जाए जाव गुत्तबंभयारी। तते णं से पउमे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमादियाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम जाव विहरति। तते णं से पउमे अणगारे तेणं ओरालेणं जहा मेहो तहेव धम्मजागरिया चिंता एवं जहेव मेहो तहेव समणं भगवं आपुच्छित्ता विउले जाव पाओवगते समाणे तहारूवं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं, बहुपडिपुण्णाइं पंच वासाइं सामन्नपरियाए, मासियाए संलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं आणुपुव्वीए कालगते, थेरा ओत्तिन्ना भगवं गोयमं पुच्छइ, सामी कहेइ जाव सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता आलोइय० उड्ढं चंदिमसोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववन्ने दो सागराइं। से णं भंते! पउमे देवे तातो देवलोगातो आउक्खएणं पुच्छा, गोयमा! महाविदेहे वासे जहा दढपइन्नो जाव अंतं काहिति। तं एवं खलु जंबू! समणे णं जाव संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि ॥ १ ॥

जइ णं भंते! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, दोच्चस्स णं भंते! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते? एवं खलु जंबू तेणं कालेणं २ चंपा नाम नगरी होत्था, पुन्नभद्दे चेइए, कूणिए राया, पउमावई देवी। तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कोणियस्स रन्नो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवी होत्था। तीसे णं सुकालीए पुत्ते सुकाले नामं कुमारे। तस्स णं सुकालस्स कुमारस्स महापउमा नामं देवी होत्था, सुकुमाला। तते णं सा महापउमा देवी अन्नदा कयाइं तंसि तारिसगंसि एवं तहेव महापउमे नामं दारते जाव सिज्झिहि त्ति, नवरं ईसाणे कप्पे उववाओ उक्कोसट्ठिईओ, तं एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं०। एवं सेसा वि अट्ठ नेयव्वा। मातातो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूलसूत्र-२,३

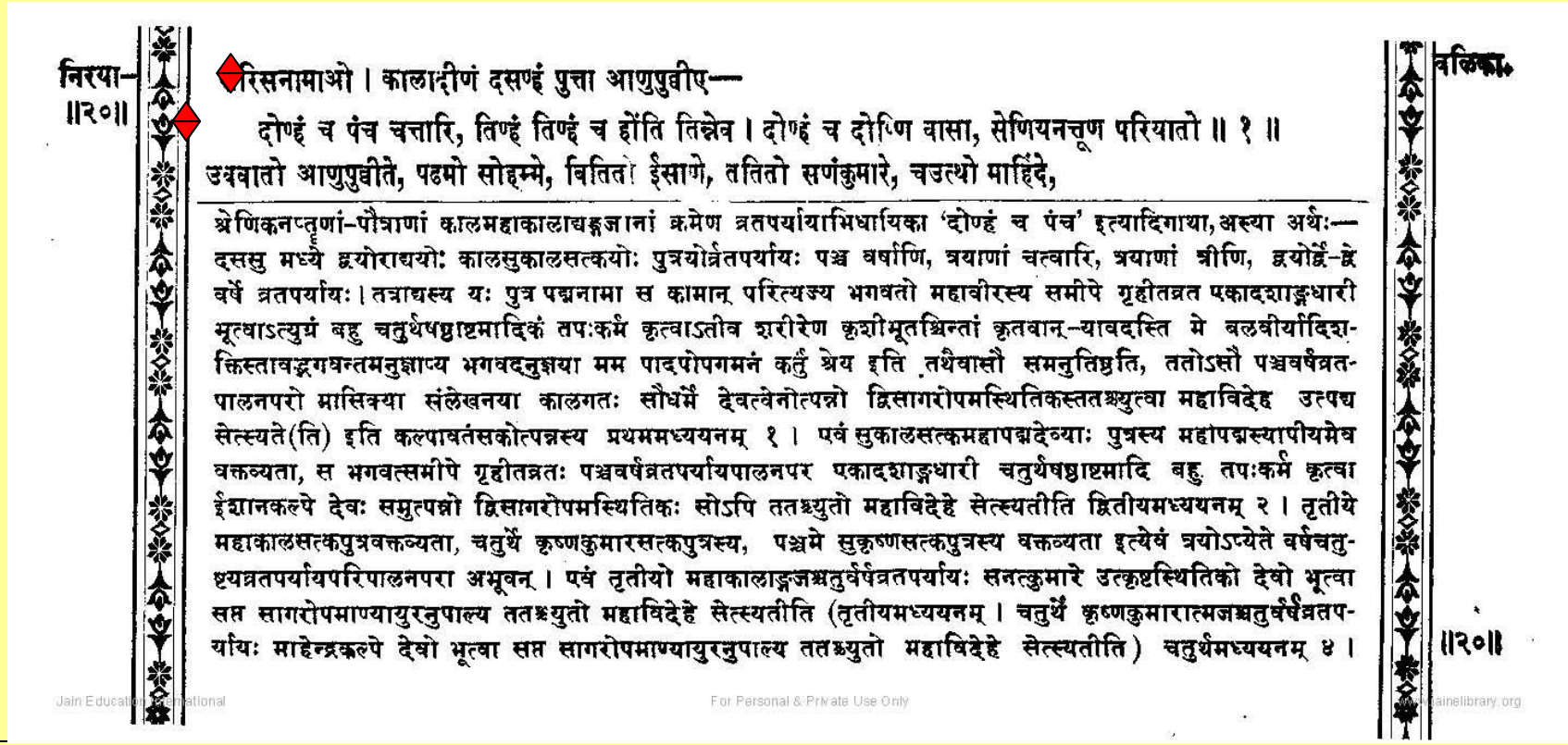

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [३]

रिसनामाओ। कालादीणं दसण्हं पुत्ता आणुपुवीए—

दोण्हं च पंच चत्तारि, तिण्हं तिण्हं च होंति तिन्नेव। दोण्हं च दोण्णि वासा, सेणियनत्तूण परियातो॥ १॥

उववातो आणुपुवीते, पढमो सोहम्मे, बितितो ईसाणे, ततितो सणंकुमारे, चउत्थो माहिंदे,

श्रेणिकनप्तृणां-पौत्राणां कालमहाकालाद्यङ्गजानां क्रमेण व्रतपर्यायाभिधायिका 'दोण्हं च पंच' इत्यादिगाथा, अस्या अर्थः— दससु मध्ये द्वयोराद्ययोः कालसुकालसत्कयोः पुत्रयोर्व्रतपर्यायः पञ्च वर्षाणि, त्रयाणां चत्वारि, त्रयाणां त्रीणि, द्वयोर्द्वे-द्वे वर्षे व्रतपर्यायः। तत्राद्यस्य यः पुत्र पद्मनामा स कामान् परित्यज्य भगवतो महावीरस्य समीपे गृहीतव्रत एकादशाङ्गधारी भूत्वाऽत्युग्रं बहु चतुर्थषष्ठाष्टमादिकं तपःकर्म कृत्वाऽतीव शरीरेण कृशीभूतश्चिन्तां कृतवान्—यावदस्ति मे बलवीर्यादिशक्तिस्तावद्भगवन्तमनुज्ञाप्य भगवदनुज्ञया मम पादपोपगमनं कर्तुं श्रेय इति तथैवासौ समनुतिष्ठति, ततोऽसौ पञ्चवर्षव्रतपालनपरो मासिक्या संलेखनया कालगतः सौधर्मे देवत्वेनोत्पन्नो द्विसागरोपमस्थितिकस्ततश्च्युत्वा महाविदेह उत्पद्य सेत्स्यते(ति) इति कल्पावतंसकोत्पन्नस्य प्रथममध्ययनम् १। एवं सुकालसत्कमहापद्मदेव्याः पुत्रस्य महापद्मस्यापीयमेव वक्तव्यता, स भगवत्समीपे गृहीतव्रतः पञ्चवर्षव्रतपर्यायपालनपर एकादशाङ्गधारी चतुर्थषष्ठाष्टमादि बहु तपःकर्म कृत्वा ईशानकल्पे देवः समुत्पन्नो द्विसागरोपमस्थितिकः सोऽपि ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति द्वितीयमध्ययनम् २। तृतीये महाकालसत्कपुत्रवक्तव्यता, चतुर्थे कृष्णकुमारसत्कपुत्रस्य, पञ्चमे सुकृष्णसत्कपुत्रस्य वक्तव्यता इत्येवं त्रयोऽप्येते वर्षचतुष्टयव्रतपर्यायपरिपालनपरा अभूवन्। एवं तृतीयो महाकालाङ्गजश्चतुर्वर्षव्रतपर्यायः सनत्कुमारे उत्कृष्टस्थितिको देवो भूत्वा सप्त सागरोपमाण्यायुरनुपाल्य ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति (तृतीयमध्ययनम्। चतुर्थं कृष्णकुमारात्मजश्चतुर्वर्षव्रतपर्यायः माहेन्द्रकल्पे देवो भूत्वा सप्त सागरोपमाण्यायुरनुपाल्य ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति) चतुर्थमध्ययनम् ४।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूलसूत्र-४,५

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[५]

पंचमओ बंभलोए, छट्ठो लंतए, सत्तमओ महासुक्के, अट्ठमओ सहस्सारे, नवमओ पाणते, दसमओ अच्चुए। सवत्थ उक्कोसठिई भाणियवा, महाविदेहे सिद्धे ॥ १० ॥

कप्पवडिंसियाओ संमताओ। बितितो वग्गो दस अज्झयणा ॥ २ ॥

॥ बीओ वग्गो सम्मत्तो ॥

पञ्चमः सुकृष्णसत्कपुत्रो वर्षचतुष्टयं व्रतपर्यायं परिपाल्य ब्रह्मलोके पञ्चमकल्पे दश सागरानुत्कृष्टमायुरनुपाल्य ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति पञ्चममध्ययनम् ५। षष्ठाध्ययने महाकृष्णसत्कपुत्रस्य वक्तव्यता, सप्तमे वीरकृष्णसत्कपुत्रस्य, अष्टमे रामकृष्णसत्कपुत्रस्य वक्तव्यता। तत्र त्रयोऽप्येते वर्षत्रयव्रतपर्यायपरिपालनपरा अभूवन्। एवं च महाकृष्णाङ्गजो वर्षत्रयपर्यायाल्लान्तककल्पे षष्ठे उत्पद्य चतुर्दशसागरोपमाण्युत्कृष्टस्थितिकमायुरनुपाल्य ततश्च्युत महाविदेहे सेत्स्यतीति षष्ठमध्ययनम् ६। वीरकृष्णाङ्गजः सप्तमः वर्षत्रयं व्रतपर्यायं परिपाल्य महाशुक्रे सप्तमे कल्पे समुत्पद्य सप्तदश सागरोपमाण्यायुरनुपाल्य ततश्च्युतो विदेहे सेत्स्यतीति सप्तममध्ययनम् ७। रामकृष्णाङ्गजोऽष्टमो वर्षत्रयं व्रतपर्यायं परिपाल्य सहस्रारेऽष्टमे कल्पेऽष्टादश सागराण्यायुरनुपाल्य ततश्च्युतो विदेहे सेत्स्यतीति अष्टममध्ययनम् ८। पितृसेनकृष्णाङ्गजो नवमो वर्षद्वयव्रतपर्यायपरिपालनं कृत्वा प्राणतदेवलोके दशमे उत्पद्य एकोनविंशति सागरोपमाण्यायुरनुपाल्य ततश्च्युतो विदेहे सेत्स्यतीति नवममध्ययनम् ९। महासेनकृष्णाङ्गजश्च दशमो वर्षद्वयव्रतपर्यायपालनपरोऽनशनादिविधिनाऽच्युते द्वादशे देवलोके समुत्पद्य द्वाविंशतिसागरोपमाण्यायुरनुपाल्य ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति दशममध्ययनम् १०। इत्येवं कल्पावतंसकदेवप्रतिबद्धग्रन्थपद्धतिः कल्पावतंसिकेत्युच्यते। ता एताः परिसमाप्ताः द्वितीयवर्गश्च २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनिश्री दीपरत्नसागरेण पुन: संपादित: (आगमसूत्र २०)

"कल्पवतंसिका" परिसमाप्त:

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

20

पूज्य अनुयोगाचार्य श्रीदानविजयजी गणि संशोधित: संपादितश्च

"कल्पवतंसिका-उपाङ्गसूत्र" [मूलं एवं चन्द्रसूरि-विरचिता वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

"कल्पवतंसिका" मूलं एवं वृत्ति:" नामेण

परिसमाप्त:

Remember it's a Net Publications of 'jain_e_library's'